तार-सप्तक के प्रयोगवादी कवि और माथुरजी का तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

सन 1940-41 के आसपास भारतीय जन-जीवन में दमन, गतिरोध, मँहगाई, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय संघर्ष आदि ने एक ऐसी उथल-पुथल मचा दी थी कि भारत का मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी दल इन सबसे क्रोधित हो उठा। उसके हृदय में असंतोष की तीव्र ज्वाला धधकने लगी थी। अधिक संवेदनशील होने के कारण वह व्यथित बेचैन दिखाई देने लगा था। और आंदोलनों की असफलताओं ने उसे नयी क्रांति की उन्मुख कर दिया था। ऐसी ही स्थिति में एक ऐसी काव्य-धारा का श्रीगणेश हुआ। जिसमें न तो छायावाद की-सी मधुर एवं सुकुमार कल्पनाओं की रंगीनी और न जिसमें प्रगतिवाद की ठोस यथार्थ की शुष्कता एवं रूक्षता थी। अपितु जिसमें प्रयोगशीलता के प्रति ललक थी। कविता की नई-नई राहों के अन्वेषण की प्रवृत्ति थी, छायावादी रोमंटिक भावुकता से छुटकारा दिलाने की प्रेरणा थी। नवीन परिवर्तनों से विक्षुब्ध समवेदना को नई सौंदर्य दृष्टि प्रदान करने की उत्कंठा थी, व्यक्ति की इकाई तथा समाज की व्यवस्था के बीच संबंध को स्वर देने एवं उसे शुभ बनाने की लालसा थी। काव्य की सामाजिक महत्व स्वीकृति का आग्रह था। और जिसमें सादृश्य मूलक अलंकारों के स्थान पर वृहंतर अर्थों को प्रतिध्वनित करनेवाले स्वतः निर्मीत प्रतीकों एवं सजीव बिंबों को सजाकर एवं सँवारकर रखने के लिए अधिक जोर दिया गया। इस काव्यधारा को 'प्रयोगवाद' नाम दिया गया और 'तार-सप्तक' का प्रकाशन महत्वपूर्ण घटना है। यह 1943 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें जिन सात कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुई थी, उनके नाम है - गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय इस के संपादक अज्ञेय थे। उन्होंने इस सप्तक की भूमिका में इस नूतन काव्यधारा की वकालत करते हुइ कविता - विषयक अपनी मानताओं का उद्घाटन किया। इतना ही नहीं, अन्य कवियों ने भी अपने-अपने वक्तव्य देकर अपनी मान्यताओं की ओर संकेत किये है।

इस प्रयोगवादी नूतन काव्य-धारा में प्रयोग को ही एक मात्र साध्य माना गया है। पुरानी परंपराओं को निष्क्रिय घोषित किया गया है। पुरानी उपलब्धियों को निरर्थक बताया गया है। कविता को जन-जीवन से उत्पन्न मानकर नगर के वातावरण अथवा शहरी परिवेशों से उद्भूत किया गया है। इस तीव्र गति प्रदान करने का श्रेय अज्ञेयजी को है क्योंकि अज्ञेय ही अपने सहित नये बीस कवियों को सप्तकों के माध्यम से हिंदी पाठकों के संमुख

लाये है। यद्यवि नई धारा के अन्य सभी कवियों ने अपने-अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त किए है और वे परस्पर मेल भी नहीं खाते। क्योंकि अज्ञेय के अनुसार - " वे सब किसी एक स्कूल के नही है किसी एक मंजिल पर पहूँचे नहीं है, अभी राही है - राही नहीं राहों के अन्वेषी। उनमें मतैव्य नही है सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है सभी जीवन के विषय में, समाज, धर्म और राजनीति के विषय में, काव्य-वस्तु और शैली के छंद और तुक के कवि के, कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है। यहाँ तक कि हमारे जगत् के ऐसे सर्वमान्य और स्वयंसिद्ध गौलिक सत्यों को भी वे समान रूप से स्वीकार नहीं करते, जैसे - लोकतंत्र की आवश्यकता उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा काननबाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता आदि। "

प्रयोगवादी युग को नयी कविता का युग भी कहा जाता है। प्रयोगवादी कवियों का आग्रह कला के संदर्भ में नवीन प्रयोगों के बारे में है और प्रयोगशीलता उसकी प्रेरणा है।

प्रयोगवादी कवियों में जो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती है, वे इसप्रकार है -

।) पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति असंतोष के कारण समाजवादी यथार्थ की अभिव्यक्ति पर बला भारतभूषण अग्रवाल और प्रभाकर माचवे द्वारा प्रगतिवाद के विरोध के बावजूद भी प्रगतिवादी, ढंग की कविताएँ उक्त पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध में लिखी गयी है। गिरिजाकुमार माथुरजी के अतिरिक्त सभी में यह आग्रह न्यआधिक रूप में रहा है। ग्राम जीवन के प्रति अनुरक्ति (रामविलास शर्मा)

2) व्यक्तिवादी प्रवृत्ति (सर्वाधिक अज्ञेय में) के कारण आत्मरति व्यक्तित्व विघटन के कारण आक्रोश, खीझ, घुटन, कुंठा, संकट, संत्रास का चित्रण।

3) व्यक्तिगत अहं का पोषण - यह भी सर्वाधिक अज्ञेयमें हि मिलता है, समष्टि से जुडने का प्रयत्न भी लेकिन कटाव अधिक। परिणाम स्वरूप मानसिक बिखराव और एक-दार्शनिकता का अभाव।

4) यौव कुंठाओं और यौन वर्जनाओं का चित्रण, फ्रॉयड का प्रभाव कम नकल और ओढना अधिक यौन-चित्रण नंगेपन के कारण भदेस की सीमातक का स्पर्श करता है।

5) छायावादी रोमाष्टिकता का गांसल स्तरपर चित्रण, जो उलझी संज्ञा को घोषित करता है। यौन वर्णनाओं को भूलने के लिये प्रियतमा का स्मरण जिसमें वासना अधिक मुखरित हुई है।

इसके अतिरिक्त -

6) नवीन प्रयोगों द्वारा पाठकों को चौंकाने की प्रवृत्ति।

7) ओढी हुई बौद्धिकता के कारन अस्पष्ट बौद्धिकता को जीवन-दर्शन की संज्ञा देने का प्रयास।

8) परंपरा का यथा संभव खंडन।

9) छंदों के टूटने का बहुत लाभ उठाकर पद्य और गद्य के मौलिक अनार को मिटा देना।

इन सब प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय परिस्थितियों के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियें से प्रभाव भी अधिक विदेशी वैज्ञानिक और विज्ञान विरोधी दर्शनों से विकासवाद, मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, अस्तित्ववाद तथा शिल्पगत आंदोलनों में अतियथार्थवाद, बिंबवाद, प्रतीकवाद, धनवाद और डाडावाद के सैद्धांतिक पक्ष का अंवाछित सीमातक ग्रहण किया गया है।

अन्तः हम इस अध्याय में प्रयोगवादी कवि और गिरिजाकुमार माथुरजी के काव्य का समग्र रूप से विवेचन करेंगे। प्रयोगवादी कवियों ने उपेक्षितवर्ग सामाजिक विषय पर उपनी लेखणी चलाई।

गजानन माधव मुक्तिबोध और गिरिजाकुमार माथुर :-

मुक्तेबोध या कोई स्तर का कवि काव्य की समूची जीवंत परंपरा को आत्मसात करते हुए अपने सम्य की समस्याओं से जूझता है। मुक्तिबोध समसामायिक होते हुअे भी साहित्य उसका अतिक्रमण कर जाता है। अपनी नयी पीढी के प्रति मुक्तिबोध को जो अटूट आस्था है। वह उसे बाल्मीकी, 'कुमार संभव' तथा कालिदास परंपरा से संपृक्त करती है। आधुनिक युग में वह छायावादी रोमानियत, प्रगतिवादी दृढता और प्रयोगवादी वैयक्तिक चेतना, बौद्धिकता दर्द आदि से अपना करता है। नए ज्ञान-विज्ञान ने भी उनकी निर्मिति में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है।

व्यक्तिवादी मनोभूमि के चित्रण में कुक्तिबोध की कविता -हास मानवीय लघुता, संघर्ष निराशा मनोभग्नता एकालाप आदि के पुट लेकर चलती है। एकालाप के अंतर्गत कवि विचार-तत्व और बौद्धिकता से युक्त है। आज मानव को अपने व्यक्तित्व में -हास दिखाई देने लगा है। तथा वह पुंसत्वहीन हो गया है। आज का मानव परंपरित 'महामानव' की भावना को लेकर नहीं चलत।

कवि के शब्दों में -

अ) " अहं भाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में
जैसे घूरे पर उठ्ठा है
धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त। " [1]

ब) " दब चूकी जो मर चुकी है आत्मा
खतम जो हो ही गयी आकांक्षा।
व्यक्ति में व्यक्तित्व के खंडहर
गान कर उठते उसी के गीत। " [2]

तो माथुरजी ने व्यक्तिवादी चित्रण इसप्रकार किया है " मानव तुच्छता सुडता और विकृतियों के कर्दम में पडा हुआ है फिर भी उसका व्यक्तित्व लघुता से कुंठित है, फिर भी उसका आत्म सम्मान मरा नहीं है, जीवित है और रह सकता है वास्तविक यह लघुमानव ही आज का मध्यवर्गीय व्यक्ति है जो आधुनिक परिवेश की उपज है। समाज की महान शक्तियों द्वारा जो तिरस्कृत हो रहा है। नयी कविता जिस नये मानव व्यक्तित्व के लिए संकल्पबद्ध है, वह आधुनिकता, सामाजिक दायित्व, स्वाभिमान और विश्वबंधुत्व की दीप्ति से अलौकित है। उसकी आस्था लघुता या महानता के प्रति उतनी नहीं। जितनी की सहजता के प्रति वह अत्यंत सहज भाव से अन्याय, दमन, शोषण, तथा रूढिग्रस्त जर्जर संस्कारों से जूझना चाहता है। नयी कविता में प्रतिष्ठित मानव व्यक्तित्व विषम सामाजिक परिस्थितियों से जूझते रहने में ही देवत्व-मनुष्य के आदर्श प्रकृत रूप का अभिलाषी है।

माथुरजी के शब्दों में -

" है मुझे स्वीकार
मेरे वन, अकेलेपन, परिस्थिति के सभी काँटे
ये दधीची हड्डियाँ हर दाह में तप ले
न जाने कौन दैवी-आसुरी मेरी यशस्वी हो
न जाने किस घडी देन से मेरी
करोडों त्याग के आदर्श विजयी हो
न जाने कौन सा उत्सर्ग
बढ अमरत्व हो जाए। " [3]

मानव युग-युग से शक्ति संपन्न सामाजिक शक्तियों द्वारा उपेक्षित रहा। परिणाम स्वरूप साधारण मानव मन, मस्तिष्क, भावना, चेतना सभी दृष्टियों से बोने है, कुंठित है।

वैयक्तिक स्वर पर उन्हें चिंतन - मनन करने का अवसर ही नहीं दिया गया। आज के लघु मानव की स्थिति का एक चित्र

" हम सब बौने है
मन से, मस्तिष्क से भी
भावना से, चेतना से भी
बुद्धि से, विवेक से भी
क्योंकि हम जन है
साधारण है हम नहीं है विशिष्ट। " [4]

व्यक्तिवाद और उसकी चरम परिणीत अहंवाद को प्रयोगवाद की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। गिरिजाकुमार माथुरजी की रचनाओं में व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति तो मिलती है किंतु उसका अहंवादी रूप प्रायः नहीं पाया जाता। उनकी रचनाओं में समष्टि कल्याण का स्वर ही प्रधान है। -

" इस लाली का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीडित है मेरे समान
दुःख दर्द, अभाव भोग कर भी जो झुके नहीं
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान। " [5]

मुक्तिबोध ने समान संपृक्त वैयक्तिकता को स्वरूप को इसप्रकार चित्रित किया है। जैसे -

" अपनी व्यक्तिमत्ता के सहारे जो चले है प्राण
उनको कौन देता है
अचल विश्वास का वरदान
उनको कौन देता है प्रखर आलोक
खुद ही जल
कि जैसे सूर्य
अपने ही हृदय के रक्त की उषा
पथिक के क्षितिज पर विछ जाये
जिससे यह अकेला प्रांत भी निःसीम परिचय की मधुर
संवेदना से आत्मवत हो जाय। " [6]

कवि मुक्तिबोधजी ने पूँजीवादी समाज के प्रति क्रोध प्रगट किया है। और आवेश शैली में यहाँ तक लिख दिया है। देखिए -

" तुम को देख निकली उमड आती शीघ्र
मेरी ज्वाल, जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चलें अविवेक
तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ। " [7]

माथुरजी ने पूँजीपतीवादी विरोधी तथा विषम अर्थव्यवस्था के विरूद्ध कठोर मत प्रगट किया है। संघर्ष को कवि ने अणुबम के रूप में माना है। माथुरजी के शब्दों में -

" ज्वालामुखी के दीप-सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलती हुई आधार है
संघर्ष का अणुबम यहाँ जाँचा गया। [8]

गजानन माधव मुक्तिबोध के काव्य में शोषित पीडित और उपेक्षित जन-समुदाय के प्रति सहचर की भावना उन्मेषित हुई है। यहाँ मुक्तिबोध उन सबका सहचर बनकर आया है।

मुक्तिबोध के शब्दों में -

" अभी तक
सिर में जो तडफडाता रहा ब्रम्हांड
लडखडाती दुनिया का पूरा मानचित्र
लडखडाते मुठभेड करते हुए स्वार्थों के बीच
भोले-भोले लोगों के माथे पर घाव
कुचल गये इरादों के बाकी बचे धड
अँधियाली गलियों में घूमता है
कोई मौत का पठान
माँगता है जिंदगी जीने का ब्याज
उजली - उजली सफेदी में
भ्रूणों का अंधेरे में कमागत जन्म

सत्ताग्रही, अर्थाकाक्षी शक्ति के कृत्य
और मेरे प्राणों में
सत्यों के भयानक
केवल व्यंग्य नृत्य। व्यंग्य नृत्य। " [9]

मथुरजी के काव्य में उपेक्षित पीडित और अभावों से भरी जिंदगी और पूँजीपतियों की शान शौकत की तुलना की है। उँचे बंगलों, मोटरों में घूमने वाले व्यक्तियों के शोषण के कारण ही लाखों व्यक्ति अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ है। उनके पसीने की कमाई पर उनका नहीं पूँजीपतियों का अधिकार होता है। क्लर्क मजदूर, किसान कठिन से कठिन परिश्रम करने पर भी दो वक्त का भोजन भी नहीं मिलता इसका प्रमुख कारण है शक्तिसंपन्न लोग उनका शोषण कर रहे है। और ऐसे शोषण से हमारा समाज ही नहीं तो राष्ट्र भी निष्क्रिय और कमजोर हो जाता है।

माथुरजी के शब्दों में -

" शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है। " [10]

भारतभूषण अग्रवाल और गिरिजाकुमार माथुर :-

भारतभूषण अग्रवाल की साम्यवाद से आसक्ति और विरक्ति दिखायी देती है। अग्रवालजी जीवकोपार्जन के लिए भटकने से विचारो में विद्रोह पैदा हुआ। उनके व्यक्तित्व की रेखाओं को देखने से स्पष्ट होता है कि इनमें अनेक मोड आये है। प्रभावों को स्वीकार करने की और अपने आप को बदलने की शक्ति इतनी तीव्र रही है, कि वे स्थिर होकर किसी विशेष धारा में नहीं बँध सके 'तार-सप्तक' के वक्तव्य में वे अपनी वैचारिक स्वीकृति से प्रकट करते है। लेकिन उनकी परवर्ती रचनाओं में यह स्वीकृति बदली है।

भारतभूषण अग्रवाल वादीय यात्रा प्रारंभ करके 'निर्वाद' हो गये है। आरंभिक रचनाओं में वैयक्तिक और निराशायें प्राप्त है। इन रचनाओं में दो स्वर हमें दिखाये देते है। पहला स्वर था सपनों को सजाना और दूसरा स्वर था शोषण सत्ता से युद्ध छेड देना। प्रथम स्वर के अंतर्गत प्रणयं एवं प्रकृति से संबंधीत रचनाएँ लिखी गई और दूसरे स्वर के अंतर्गत वर्ग-संघर्ष, शोषण तथा दारिद्रय के चित्रण के साथ जन-क्रांति के लिये जन समाज को ललकारा गया है।

प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता में नूतन सौंदर्य बोधके कारण प्रकृति चित्रण में भी नवीनता के दर्शन होते है। प्रवृत अंतर की भावाकुलता को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण कार्य करती है। प्रकृति के आकर्षक मोहक चित्र कवि को भावुक उल्लास से भर देती है।

अग्रवालजी के काव्य प्रकृति का वर्णन कितना मनोहर किया गया है। उदा. कि लिए देखिए -

" फूटा प्रभात, फूटा विहान
छूटे दिनकर के शर ज्यों छवि के वहि-बाण
(केशर - फूलों के प्रखर बाण)
प्रस्फुटित पुष्पों के प्रज्वलित दीप,
लौ-भरे सीप।
फूटी किरणें ज्यों वहि-बाण, ज्यों ज्योति शल्य,
तरू - बन में जिनसे लगी आग।
लहरों के गीले गाल, चमकते ज्यों प्रबाल
अनुराग लाल। " [11]

तो माथुरजी ने प्रकृति का वर्णन अपने काव्य में इसप्रकार किया है। -

" नहाँ कर वनस्पति हुई ऋतुमती-सी
नितम्बिनि धरा ज्यों कुँवरि रसवती-सी
नवोढा नदी ने नवल अंग खोले
सजी दीपतन की मिलन आरती-सी
उठे नैन लालिम हँसी रेख काजल
काले अगरू-से उठे आज बादल। " [12]

प्रयोगवादी कविता में माँसल प्रेम का चित्रण वर्णन है। दमित वासना का प्रचुब चित्रण है, इमानदारी के साथ यौवन वर्जनों का चित्रण है, क्योंकि आधुनिक युग सेक्स संबंधी वर्णनाओं सें अंकित है।

'मिलन', 'चलते-चलते' कविता में परंपारित प्रेमचित्रण है, तथा 'विदा बेला' में रोमांस की ओर उन्मुखता -

भरतभूषण अग्रवाले के शब्दों में -

" पाया स्नेह, पा सकी न पर तुम अभी बिदा-रीति का ज्ञान पगली! बिछोह की बेला में बिन

माँगे ही प्रीति का दान दो मुझे! कहो इस अंतिम पल में एक बार 'प्रियतम' पूछो 'कब लौटोगे, वसंत में? वर्षा में? शारद-श्री में? शीत की शर्वरी में? सरले! मत रह जाओं नत्मुख - उदास मुखरित होगी यह नीखता, बन व्यथा वियोगी प्राणों में तब तुम सोचोगी बार-बारः 'क्यों आँसू में, मुस्कानों में दुख-सुख की उस अद्वितिय घडी को किया न मैने अमर? प्रिये! यह कसक तुम्हे कल पायेगी : व्यों मैंने प्रिय को अश्रुपिये, इस विरह - काल के लिए हाय! मर अलिंगन, पाकर चुंबन। " [13]
प्रणय का प्रारंभ आकर्षण से होता है और उसकी परिणति समर्पण में होती है। प्रणय सहज युवा मन का भाव है, आत्म विस्तार है। कवि के शब्दों में मिलन का एक चित्र अग्रवालजी ने इसप्रकार अंकित किया है।

" छलक कर आयी न पलकों पर विगत पहचान
गुस्करा पाया न ओठों पर प्रणय का गान
ज्यों जुडी आँखे, मुडी तुम, चल पडा मैं मूक
इस मिलन से और भी पीडित हुए ये प्राण। " [14]

तो माथुरजी ने प्रेम का चित्रण इसप्रकार किया है -

" मेरे सपने किसी द्वार के बाहर
रोज लगाते फेरे ।
दवी हुई-सी आहें भी है,
देर देश की सीमा घेरे।
नीले नभ की गहराई में,
डूब लौट आती है आँखे,
होने पर भी दूर आज
तुम कितने निकट हो गई मेरे
कितनी पूनो तुम पर छाई
बनकर पूजन के चंदन सी। " [15]

अग्रवालजी पीडा, घुटन, निराशा, अवसाद आदि सं द्वंद्वग्रस्त और असंतुष्ट होकर महसूस करता है।

अग्रवालजी के शब्दों में -

" एक युग से मैं विरस जीवन बिताता आ रहा हूँ
सब तरफ लगता बडा सुनसान
कोई शब्द तक आता नहीं है

गहन तम का पर्दा मन पर छा गया है। " [16]

तो माथुरजी के काव्य में घुटन, वेदना, निराशा का चित्रण इसप्रकार दिखायी देता है। जैसे,

" द्विविधा हत साहस है, दिखता है पंथ नहीं
देह सुखी हो पर मन के दुख का अंत नहीं
दुख है न चाँद खिला, शरत रात आने पर
क्या हुआ, जो खिला फूल, रस बसंत आने पर। " [17]

वेदनानुभूति का चित्रण भारतभूषण ने अपने काव्य में ऐसे किया है,

" प्यासा तट जहाँ था, वहीं रहा
धारा ही आई
प्लावन की बेला में
आज नई उपलब्धि पाई
निश्चल समर्पण ही सिद्धि है,
इसकी खोज में भटक,
मैंने उम्र यों ही गंवाई। " [18]

माथुरजी ने जिस प्रकार प्रणय की मादकता से परिपूर्ण संयोग श्रृंगार के गीत गाये है। उसी प्रकार व्यथा, टीस, वेदना से परिपूर्ण विरह का निरूपण भी बहुत मात्रा में किया है। कवि की विरहानुभूति विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है। कभी-कभी तो कवि स्मृति-जन्म विरह वेदना से छटपटाता दिखायी देता है।

माथुरजी के शब्दों में -

" आ जाती तुम प्राण सदा ही
चल मेरे सपनों के पथ पर
वे काली सलज्ज-सी आँखे
भटकी-भोली-सी, नत चितवन
होने पर भी बंद वही
रक्ताभ अधर कुछ मुसकाते-से
खिंच जाती तसवीरें तब -
अपने नयनों के मूक मिलन की।
आज भूल जाऊँ मैं कैसे। [19]

युग के संत्रास-कुंण्ठा और घुटन को अनुभव करते हुए अग्रवाल का कवि अपने खंडित व्यक्तित्व के दोहर पन को पहचान लेता है। जैसे -

" एक दीखनेवाली मेरी इस देह में
दो मैं है।
एक मैं
और एक मेरा पिट्ठू।
मैं तो, खैर, मामूली-सा क्लर्क हूँ
पर, मेरा पिट्ठू?
वह जीनियस है। " [20]

माथुरजी ने अपने काव्य में व्यक्तित्व-विघटन कुंठा, निराशा, आक्रोश आदि का चित्रण इसप्रकार किया है -

" देखो, गाथाकार, क्षितिज पर,
सूर्य ग्रहण पड रहा मनुज पर
अर्थ असुर मुख खोल रहे है
युद्ध राक्ष डोल रहे है। " [21]

भारतभूषण अग्रवाल जोश में अपना विवेक इस तरह खो जाता है कि देश की महान विभूति पर भी व्यंग करने से नहीं चूकता है। तो जीवन के यथार्थ को तीक्ष्ण व्यंग्यद्वारा उभारने का प्रयास कवि अग्रवालजी ने अत्यंत कुशलता से किया है। गांधी जी की अहिंसावादी भावना पर चुभते हुए व्यंग्य का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया है।

" खाना खाकर कमरे में बिस्तर पर लेटा
सोच रहा था मैं मन ही मनः हिटलर बेटा
बडा मुर्ख है, जो लडता है तुच्छ क्षुद्र मिट्टी के कारण
क्षणभंगूर ही तो है रे। यह सब वैभव-धन।
अंत लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला
लिखूँ एक खत, हो जा गांधीजी का चेला
वे तुझको बतलायें गे आत्मा की सत्ता
होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण गहत्ता
कुछ भी तो है नहीं धरा दुनिया के अंतर। " [22]

वैसे देखा जाय तो व्यंग्य की प्रवृत्ति माथुरजी के काव्य की प्रधान विशेषता नहीं है। उन्होंने आधुनिक जीवन के वैषम्य को तुलना द्वारा सरल ढंग से प्रतिपादित अवश्य किया है किंतु उसके लिए तुलना का सहारा कही नहीं लिया। लेकिन कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित उनकी रचनाओं में यह प्रवृत्ति दिखायी देती है। इस विषय में सर्वाधिक चित्र कविता है - " विक्षिप्तों का जुलुस "
यह कविता कुछ वर्ष पूर्व फ्रांस और चीन में घटित सांस्कृतिक क्रांति से संबंधित है। इस कविता में अत्याधुनिकता के मोह में पतन के कगार खडे मानव-समाज की खोखली प्रवृत्तियों का पर्दा फाश किया गया है।

" सडकों पर घूम रही है उन्मादी भीडें
चिल्लाता आता है विक्षिप्तों का भारी जुलूस
बकता हुआ घिनौनी गालियाँ
दोनों तरफ लोग
स्तंभित खडे है
सदियों से सीखी लज्जाओं से गडे हुए.
संस्कारों से सीखी लज्जाओं से गडे हुए
संस्कारों से कुलीन
भयभीत असमंजस में
भागती मर्यादाएँ हाथों से छिपाती है
गुप्त अंग
यौन केश
नुचा हुआ नंगापन। " [23]

अग्रवालजी के रचनाओं में कल्पना सौंदर्य मोह और संगीतात्मकता मिलती है। जैसे-

" ज्यों गगन में जग उठा कोई नया तारा
ज्यों हृदय में फूट फैली कोई सरस जल धारा,
वेग में अपने डुबोती युगों के मरू का किनारा
प्राण यह तव - रूप, पावक या अखंड सतेज
यह निर्मल तुम्हारा रूप
नमित्त में जैसे कि शीश पर छाई
प्रकम्पित पलों में नमकी सलोनी धूप। " [24]

और माथुरजी के काव्य में कल्पना सौंदर्य संगीतात्मकता का चित्रण इसप्रकार मिलता है।

" मंदी उजेली अटारियों में,
शरमीली का सोते में घूँघट हट रहा
लहराता चोटी का लाल गुलाब भी,
चरणों की रूनझुन बेहोश सो रही -
दूर का गीत भी होले से मिट रहा
सेजों पै आ जाना निंदिया कुमारी। " [25]

डॉ. प्रभाकर माचवे और गिरिजाकुमार माथुर :

प्रयोगवाद के प्रारंभ-कर्ताओं में प्रभाकर माचवे का स्थान महत्वपूर्ण है। 'तार-सप्तक' नाम भी उन्हीं का सुझाया हुआ है। वे कविता और पाठक के बीच में सीधे भाव-विनिमय के पक्षधर है। कविता के भावपक्ष के अंतर्गत वे रोमांस और यथार्थ को मूलतः एक ही चीज मानते है। उन्हीं के शब्दो में - " कवितागत रोमांस और यथार्थ का एक ही कोण की दो भुजायें है। रोमांस स्वस्थ मन का भावात्मक रूख है, यथार्थ उसी की बुद्धिगत कल्पना माचवेजी की काव्यचेतना को समझने का यह एक मूलतंत्र है। माचवे ने राष्ट्रीय कविता को भी दोषमुक्त माना है और उनकी स्थापना है कि प्रयोगशील काव्य ने इनसे बचने का प्रयास किया है। इसीलिये इस काव्य को अपनाया जाना चाहिए। इस कविता में विषय की विविधता, व्यंगों की तीक्ष्णता, प्रकृति का वैज्ञानिक प्रयोग और बोलचाल की भाषा में नये कल्पना-चित्रों और अर्थो को भरने की शक्ति है। यह गुण ही माचवेजी को छायावाद और प्रगतिवाद काव्यों से अलग कर देते है। "

माचवेजी ने मध्यमवर्ग का यथार्थ चित्र अपने काव्य में इसप्रकार किया है। जैसे -

" उसके मन में गहरी घुमडन
उमडन पाये ऐसी विषमय कई घुंटे से मनोभाव है
पूरी हुई न ऐसी कई उमंगे अनगिन
पूर न पाये बहते और वे दवा ऐसे कई छाव है।
इनके मन में सदी सदी के
बोदेपन के, बदी और नेकी के निश्चित रूढ नियम है। [26]

माचवेजी ने 'निम्न मध्य-वर्ग' कविता में निम्न वर्ग की आर्थिक और दैन्य स्थिति का चित्रण बहुत ही मार्मिकता से किया है। जैसे,

" इनकी इन दासत्व - जर्जरित मनसा की नस नस,
सो कहता है - 'काम में तरक्की हो,
ओहदा बढे,
कमाने वालों की खैर रहे,
औलाद बढती रहे,
मिल जाय पाव भर आटा',
जब कि इनका ही इस विराट आर्थिक विपन्नता की
चक्की में पिस-पिस कर
बन रहा महीन खुद आटा है। " [27]

तो माथुरजी के काव्य में मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में व्याप्त कुंठा, खीझ और अवसाद का यथार्थ चित्रण इसप्रकार अंकित हुआ है।

" मेरे मन में आकांक्षाओं का ढका मौन
निचौडी हुई लालसाएं
भीगता दंभ। " [28]

माचवेजी के कविताओं में रूमानी को मलता और तरलता मिलती है जैसे -

" छचली पुरातन नेह-बात
रोमल हो उठे गात-गात
आ पास और उत्कटता से ---
उत्ताल लहर की मर्जीपर
खोदें जीवन पल-कल्प-प्रहर,
आ पास और तन्मयता से --
अब इन लहरों की मर्जी पर,
मिलकर जीवन में जीवर-स्वर,
हो जाये अमर, निर्भर, अंतर
उत्ताल तरंगों की गति पर। " [29]

माचवेजी ने प्रणय परक चित्रण कविता में इसप्रकार किया है। जैसे -

" मैंने जितना नारी, तुम को याद किया है, प्यार किया है, तुम मेरे मानस की संगिनि, चपल

विहंगिनि, नीड कि शाखा? तुम मेरे मानस की राका की एकमात्र नक्षत्र-विशाखा, तुम हो मृगाया कि आर्द्रा हो? नही, रोहिणी तुम अनुराधा, तुम छायापथ, ज्याति-शिखा तुम, तुम उल्का आलोक-शलाका तुम हरिणी, मालिनी, शिखरिणी, वसंततिलका, द्रुत विलंबिते में गतिद्वारा यति-सा ग्रह से शून्य प्रभाकर, मैं वैनायकः तुम रागिनी और मैं गायक, तुम हो प्रत्यंचा मैं सायक। " [30]

माथुरजी के काव्य में रोमानी कोमलता का चित्रण इसप्रकार हुआ है। जैसे -

" गोरी कलाई छुडाती रहीं तुम
भीगे वसन किशोरी
चाँद सा चिबुक उठाकर ले ली
चुपके से ओंठों की रोली। " [31]

प्रभाकर माचवे जी को अपने प्रणय पर अगाध विश्वास है। वह विदा की गतिविधि नहीं जानता। उनका प्रियतम यदि धोखा दे तो, भले ही दे दे, लेकिन उनका विश्वास कहता है आँख से ओझल कही जाकर छिपे मन से न जाओगे! कवि की प्रणय वेदना कहीं-कहीं महादेवी के समकक्ष प्रकट होती है -

" घोर निशा संभ्रम रंगो में, यह हुई घडियाँ पहाड
क्या लिखूँ मैं नेह पाती
कल न पाल कर कंपाती
बढ रहा है आज अंतर में विद्रोह प्रगाढ। " [32]

गिरिजाकुमार माथुरजी के काव्य में जहाँ जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति तथा संयोगयुक्त उल्लास का चित्रण हुआ है वही प्रणयजन्य विषाद का भी मार्मिक चित्रण किया गया है। विरह की पीडा के स्वरों को कवि ने कलात्मकता के साथ मुखरित किया है। विरह कवि को निष्क्रिय नहीं बनाता पर वह कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेयजी का कहना है कि वियोग एवं दुःख तो प्रेमानुभूति के अनिवार्य अंग है और उनके तत्व को वही जानता है जो उसमें आहुति बन जाता है। इसप्रकार जब वियोग की पीडा अत्यंत सघन हो उठती है तब विरही अपने मन को समझाना चाहता है और सोचता है जैसे -

" बार-बार फिर कब है मिलना
जिस सपने को सच समझा था,
वह सच आज हो रहा सपना,

याद भुलानी होगी सारी
भूले भटके याद न करना। " [33]

माचवेजी के हृदय में आस्था विशेष रूप से उभरी हुई दिखायी देती है। जैसे,

" जब दिल ने दिल को जान लिया
जब अपना-सा सब मान लिया। " [34]

साथ ही कवि में आस्था में साथ-साथ अनास्था का संशयमय संघर्ष है। बौद्धिकता चिंतन एवं विचारतत्व की दृष्टि से माचवे की कविता अपूर्व है। उसमें जीवन का दार्शनिक चिंतन एवं विचारतत्व विशेष रूप से अंकित हुआ है। जैसे -

" आसमान है म्लान कही से सुनता हूँ भूपाली की गत
क्यों है ये दीवारें अधबिच? क्या था गत औ कौन अनागत
दूर दिशाएँ नहा रही है झीना - 'जीवन-पट' छोडा है
बुद्धि-भेद की सीमाएँ है दृष्टि-ज्ञान थोडा-थोडा है
कब तक मगज मारता बैठूँ तुम से काष्ट और बोजा के
जीवन धोखा है, तो हो, यह प्यार कभी जोखों से खाली?
यह सब एक विराट व्यंग्य है, मैं हूँ सच औचा
की प्याली। " [35]

अनास्था जीवन का दार्शनिक चिंतन माथुरजी के काव्य में इसप्रकार चित्रित हुआ है।

" दिन की मिठास
अब जहर हुई है
रातों का सुख, दिन की चिंता बनकर आया,
सूर्य सुनहला उसका डूबा करता
कागज की भीतों में
वह दिमाग का बोझा ढोता,
और साथ में
क्षय-सा काला नाग पालता रक्त पिलाकर। " [36]

माचवेजी के काव्य में प्रकृति का नयन मनोहर दृश्य कहीं स्थान पर अंकित हुअे है। जैसे -

" निशि में घाकुल
अमित असित धूमिल मेघों से भरा हुआ नभ का पडाव
शशि की झिलमिल
छोटी-सी लहरों में डगमग पथहीन नाव
ज्योत्स्ना का छि में कुम्हलाता
लहरिल सम्मोहक मदिर मान। " [37]

प्रयोगवादी काव्यधारा या नयी कविता में नूतन सौंदर्य-बोध के कारण प्रकृति चित्रण में भी नवीनता के दर्शन होते है। प्रयोगधादी प्रसिद्ध कवि माथुरजी ने तो अपनी काव्य-कृतियों में नूतन प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा की है, उन्होंने अपनी सभी काव्यकृतियों में प्रकृति के अनुपम चित्र अंकित किये है। उनमें नीवनता भी निस्संदेह है।

माथुरजी के शब्दों में -

" आग, लपट, धूल, भस्म
तत्वों की उडती है
धातु, स्लेट, प्रस्तर का
नाग छत्र उठता है
अग्नि व्याल फन हजार खोल
लील रहा व्योम
कोंसों की ज्वाल रज खमंडल भुजाओं में
एक नया ताजा सूर्य्य बनकर निकलता है। " [38]

सौंदर्यानुभूति का चित्रण प्रभाकर माचवेजी के काव्य की एक खासीयत है माचवे के 'बसन्तागम' में सौंदर्यानुभूति का चित्रण इसप्रकार किया गया है। -

" मधुरितु रानी महान्
मानिनी, बसंती रंग चोली झलकै जिसकी,
ढलके आंचल धानी लहरा-सा,
आँखों में आकर्षण भी खासा,
युग-युग का प्यासा-सा छलके दिलासा जहाँ,
उतरों उन सरसों के खेतों पर गयाधिनि
हलके - हलके - हलके।
फूल में छिपे निशान है फल के। " [39]

'अश्वत्थ' में संध्या का चित्र -

" भरे नभ में रात उतरती
शिशिर साँझ की धुंधली बेला। " 40

माथुरजी के काव्य में सौंदर्यानुभूति का ऐसा अंकित हुआ है।

" जब तुम पहली बार मिली थी
पीले रंग की चूनर पहिने
देख रही थी चोरी-चोरी
मेरे मीठे गीत प्यार के
मैने पास अचानक जाकर
छीन लिया था उन्हें
तुम्हारे मेहंदी-रंगे हुए हाथों से
और लाल होकर क्वांरी लज्जा से तुमने। " 41

नेमिचंद्र जैन और गिरिजाकुमार माथुर :-

नेमिचंद्र विचारो से साम्यवादी रहे है, व्यक्तिगत निराशा और व्यापक दुःख, मानसिक क्षोभ और कुंठा, सामाजिक संघर्ष और व्यक्तित्व की मुक्ति तथा लोक कल्याण उनकी कविताओं के विषय है। आरंभ में वे प्रेम परक गीत लिख रहे थे। उन गीतों में अधिकांशतः प्रतीक्षा, मिलन, विदा, व्यथा और आकर्षण की कहानी थी। धीरे-धीरे कवि की गंभीर भाव आते गये। वे क्रमश आशा और उल्लास से भरी रचना में लिखते है। राग-बुद्धि, आदर्श-व्यवहार, विवेक कर्म का सामजस्य खोजने के लिये कवि लालायित है। वे चाहते है कि कवि वास्तविकता को समझे इसे 'विवेकपूर्ण वास्तव' की संज्ञा कवि ने दी है। 'विवेकपूर्ण वास्तव' एक प्रकार से मानव मुक्ति का आलोक है। इसप्रकार कवि नेमिचंद्र कविता से केवल आनंद नहीं पाना चाहते, वे उसमें लोक कल्याण और मानव मुक्ति चाहते है। 'तार-सप्तक' संग्रहीत 'जिंदगी की राह' कविता की कल्पना सामाजिक चेतना के साथ की गई है। जैसे -

" है निरंतर ही प्रगति की,
एक गति से दौडने की छिपी मन में चाह,
मेघ माला से लदे,
उँचे बरफ के अनुल्लघंय,अगम्य पर्वत
काँपते तूफान के विक्षोभ से चंचल
अछोर तरंग के संकुल,

सर्वभक्षी सागरों को रौंद जाने
लाँघ जाने का अथक उत्साह
ऐसी चाह
यह है जिंदगी की राह। " [42]

गिरेजाकुमार माथुर मानव मूल्यों के प्रति दायित्व चेतना को ही आधुनिक कविता का सबसे महत्वपूर्ण विषय मानते है। वह रह-रहकर मानव-मूल्यों की ध्वजा लेकर टूटते-हारते किंतु निरंतर जूझते हुए लोक कल्याण के अभिषेक का मंगलमय संकल्प दुहराता है।

" गीत व्यर्थ गई, उपलब्धि हीन साधना रही
मन में लेकिन संध्या की लाली बाकी है।
इस लाली का मैं तिलक करूं हर माथे पर
दूं उन सबको जो पीडित है मेरे समान
दुख, दर्द, अभाव भोग कर भी जो झुके नहीं
जो विफल रहे पर कृपा न मांगी घिघिया कर
जो किसी मूल्य पर भी शरणगत हुए नहीं। " [43]

तो नेमिचंद्र अपने काव्य में सामाजिक वैषम्य को इंगित करता है।

" रूक न जाय सुधि के बांधों से प्राणों की यमुना का संगम
खो न जाय द्रुत से द्रुततर बहते रहने की साथ निरंतर
मरे उसके बीच कहीं रूकने से बढ न जाय यह अंतर।"[44]

नाथुरजी के काव्य में सामाजिक वैषम्य का चित्रण बहुत ही कडवाहट से भरा है।
नाथुरजी के शब्दों में -

" निबलों की क्षणि-हड्डियों पर
यह वैभव का प्रासाद खडा। " [45]

नेमिचंद्र का सौंदर्यबोध छायावादी परंपरा के प्रति उन्मुख करता है, वे जीवन में संघर्ष के अतिरिक्त किसी अन्य को भी भव्य और आनंददायक मानते हैं। उनके अनेक रचनाओं में सौंदर्यानुभूति दिखायी देती है। जैसे -

डूबती संध्या का सौंदर्य चित्र इसप्रकार चित्रित किया है।

" डूबती निस्तब्ध संध्या,
ग्रीष्म की तपती दुपहरी, प्रबल झंझावात के पश्चात,

सुनसान शांत उदास संध्या।
विरल सरि का चिर-अनावृत गात
जो किसी की आँखे के अभिराग जादू के परस से
हो उठा है लाल,
बाहु-बंधन में घिरी को बाँधने को
नित्य आकुल " 46

तो 'अनजाने चुपचाप' कविता में सौंदर्यानुभूति का चित्र इसप्रकार प्रस्तुत हुआ है।

" आज बिखर कर सिमट चला है मेरे मन में
तुम्हारे सहज स्नेह का सब गीलापन
बिखर - बिखर जाता है -
किस रजनीगंधा के मद से सदा लबालब
भरे हुए उन चंचल नैनों के ऊपर से
हटा - हटा देनी होगी के केश हठीले। " 47

तो 'एक क्षण' कविता में कवि कहता है कि -

" चैत की पूनो,
शरद की चाँदनी के गीत के बेहोश स्वर-आरोह से
रात-रानी के नश से
सुरभि से। " 48

माथुरजी तो सौंदर्य रंग रोमांस के ही कवि है, उनके काव्य में सौंदर्यानुभूति इसप्रकार व्यक्त हुई। जैसे -

'भादों का ठहरा प्यार' कविता में सौंदर्यानुभूति का चित्रण कितना स्वाभाविक हो गया है। जैसे -

" फिर घुमडे वही मेघ, फिर आया याद प्यार
फिर खिलने लगे पहले-पहले के हरसिंगार
तुम, ताजी नयी घटा नील-मोर रंग की
जाल के चँदोवे, साडी - कसी, नीची, तंग-सी
बाँहों-भरी देह थी, पेट्रा की सुगेध-सी
नसों की नदियों में घूमी जलतरंग सी। " 49

रोमांन का परंपरित स्मृति रूप भी नेमिचंद्र के काव्य में मिलता है। इसमें जीवन रस के प्रति नहज अनुराग दिखायी देता है। जैसे -

" तुम हो मुझसे दूर कही पर
यौवन के प्रभात में विकसित
डाली पर झुक झुक
बल खाती,
सहज सरल निज क्रीडा में रत
कुंद कली-सी
यह मधुमास सजीला चुप-चुप
तेरे उर के आंगन को
गीला कर - कर जाता होगा री;
परिमल के मिठास से भाराकुल,
यह बसंती बयार,
उलझ-उलझ कर खोल-खोल देता होगा री,
तेरा कच - संभार सुरभिमय। " 50

माथुरजी की रचनाओं में रोमांस का चित्रण इसप्रकार किया है -

" ये नयी उम्रवाले गसीले बदन
ये नयी काट के अंगवेधी वसन
हर सडक पर
चटक रंग की बाढ
बेफिक्र चलती हुई
देहधारी शिखाएँ गरम
फूल की नोंक चुभती निकलती हुई। " 51

नेम्चिंद्र जीवन के यथार्थ को तीक्ष्ण व्यंग्य द्वारा प्रस्तुत करते है।

नेम्चिंद्र की रचनाओं में व्यक्तित्व-विघटन, कुंठा, निराशा और आक्रोश का चित्रण इसप्रकार दिखायी देती है।

नेम्चिंद्र के शब्दों में -

" आज उचटा-सा हृदय
साइरन बज जाय उसके बाद

निर्जन शून्य सडकों-सा निभृत, निस्संग खाली
व्यर्थता की स्याह-सी बेमाप चादर से
अभी ज्यों ढँक गया हो शून्य जी का प्रांत। " [52]

माथुरजी की काव्य में कुंठा निराशय आक्रोश का स्वर इसप्रकार दिखायी देता है।

" मुरझाये पत्तों के ऊपर
अपना जीवन लिखता जाता
धूल-कणों से मिला रहा हूँ
ठोकर खाई हुई साधना
धुँधला जीवन दीप हो रहा
घिरते जाते काजल के कन। " [53]

डॉ. रामविलास शर्मा और गिरिजाकुमार माथुर :-

रामविलास शर्मा को स्वयं के कवि होने पर संदेह है क्योंकि वे स्वयं को मूलतः गद्य लेखक मानते है। उनकी रचनाओं में विषय से भी अधिक प्रमुखता उनके दृष्टिकोन को प्राप्त हुई है। चाहे वे किसी किसान के जीवन से परिचय करायें, किसी आधुनिक नगर का वर्णन करे, प्रकृति पर दृष्टि डाले, उनका यह दृष्टिकोन वर्ण्य विषय को अपने अनुकूल ढालने में कभी नहीं चूकता।

प्रगतिशील भावधारा से संबंधित होने के कारण रामविलासजी में आधुनिक यथार्थ-बोध से युक्त प्रगतिवादी धारा के पुट छायावादी पलायन वृत्ति के साथ मिलते है।

उन्होंने सामाजिक विषमता को कितने स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है। देखिए -

" उन भरे धान के खेतों में दिन-रात भूख,
बस भूख महामारी का आकुल क्रंदन!
हड्डी - हड्डी सुलग रही है आग भूख की
सुलग रहा है भीतर - भीतर रक्तहीन मानव तन। " [54]

सामाजिक विषमता का और एक चित्र -

" भाई-भाई से जुदा चिता पर लडते है
भाई-भाई, दो भीरू श्वान से कायर!
लाखों की रकमें काट रहे है, काट रहे है
गले करोडों के, छिप, छिप कर कायर!

सिर पर सरकार मौत-सी बेदम बैठी है,
चुपचाप मौत-सी पस्त निकम्मी कायर। " [55]

माथुरजी ने अपने रचनाओं में सामाजिक विषमता का चित्रण इसप्रकार प्रस्तुत किया है।

रंगवेद भेद और दासता की यातनाओं में मानव जकडा रहा पराधीनता, जन्य व्यथा इन शब्दों में उतर आई है। जैसे -

" महायातना की चट्टानों से
मैं जकडा हुआ प्रमीयस
गरम हृदय का मांस नोचकर
मनुज बाज खा रहे निरंतर
नंगी स्फाय पीठ पर उछले है।
सदियों के निर्मम कोडे।
शोषक दैत्य मशीनों ने
पंजों के गडे चिंह है छोडे। " [56]

रामविलास शर्माजी जीवन की मृत्यू से श्रेष्ठ मानते हुए उनके काव्य में मानवीय आस्था विशिष्ट रूप से उजागर हुई है। जैसे -

" धरती के पुत्र की
होगी कौन जाति, कौन मत, कहो कौन धर्म?
धूलि-भरा धरती का पुत्र है,
जोतता है बोता जो किसान इस धरती को,
कितने ही मत और धर्म और जातियाँ है।
एकरस मटीलेपन में,
छिपी है विभिन्नता, विचित्रता, विषमता विश्व की
रूढियों की, नियमों की, अस्पष्ट विचारों की,
सदियों के पुरातन मृत संस्कारों की,
चिन्हित है प्रेतरूप छायायें गरीले मुँह पर
कुसंस्कृत भूमि ये किसान की
धरती के पुत्र की। " [57]

'सत्यं शिवं सुंदरम्' में मानवीय आस्था का चित्रण इसप्रकार दिखायी देता है।

" आज बढेंगे साथ कदम
निश्चय विजयी होंगे हम। " [58]

गुरूदेव की पुण्यभूमि में मानवीय आस्था का चित्र :-

" क्षुद्र है मानव-द्वारा मानव का उत्पीडन
अभी नि:स्वार्थ युवक है, जीवित है अब भी सामाजिक जीवन
गरम लहू की आज चुनौती है सब मिलकर भार उठाओ
लघु जीवन से बनेगा बहु-जनजीवन। " [59]

'समुद्र के किनारे' कविता में मानव आस्था देखिए -

" पर आगे बढता है मानव,
अपनेपन से ऊपर उठकर। " [60]

तो माथुरजी के काव्य में मानवीय आस्था नयी संभावनाओं को विकास पथ पर मुक्ति का संदेश देने में समर्थ है।

" इस मिट्टी में द्रव्य, धातु, रस
मनुज जीव, वन, नद, मरू, पर्वत
में दीपित है
उसी अग्नि की व्यापक काया।
वही अग्नि खेतों में उठकर
मुक्ति उषा बनकर आएयी
वर्ग यंत्रणावाली
लोहे की दीवार पिघल जायेंगी। " [61]

रामविलास शर्मा की कविता में तत्कालीन राजनीतिक स्वर व्यंग्य के रूप में उभरा है। जैसे -

" हिंदुस्तान हमारा है,
प्राणों से भी प्यारा है।
इसकी रक्षा कौन करे?
सेंत - मेंत में कौन करे?
पाकिस्तान हमारा है,
प्राणों से भी प्यारा है।

इसकी रक्षा कौन करे?
बैठो हाथ पै हाथ धरे
गिरने दो जापानी बम
सत्यं शिवं सुंदरम्। " 62

माथुरजी ने अपने काव्य द्वारा कटु राजनीतिक यथार्थ को बखूबी उभारा है। जैसे -

" शब्द हो रही है समाज की मूर्ति पुरानी
गरम रक्त का स्नान करा कर
संस्कारों का परिष्कार है किया जा रहा
कर राष्ट्रीयकरण विचारों के सेक्टर का
काम सोचने का भी ले लिया है राज्य ने। " 63

रामविलासजी को भारतीय ग्राम्य जीवन अभिभूत किए रहा है। वे ग्रामीण सौंदर्य के वातायन से नैसर्गिक सौंदर्य को देखने का प्रयास करते है। किसान की आकांक्षाओं उसके अभावों और उसकी शक्ति तीनों को उन्होंने अत्यंत स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। साथ ही जमीदारों, ताल्लुकेदारों और सरकारी अफसरों के प्रति घृणा भी प्रदर्शित की है।

" यह माह-पूस की चांदनी।
खेतों पर ओस-भरा कुहरा,
कुहरे पर भीगी चांदनी। " 64

'शारदीया' कविता में -

" सोना ही सोना छाया आकाश में
पश्चिम में सोने का सूरज डूबता,
पका रंग कंचन जैसे ताया हुआ,
भरे ज्वार के भुट्टे पक कर झुक गये। " 65

रामविलासजी के काव्य में स्वाभाविक ग्राम्यजीवन तथा विषमता का चित्रण इसप्रकार अंकित हुआ है। जैसे -

" पूरी हुई कटाई, अब खलिहान में
पीपल के नीचे है राशि सुची हुई,
चांदी का-सा पात किये, है तप रहा,

" छोटा-सा सूरज सिर पर बैशाख का,
काले धब्बों-से बिखरे वे खेत में
फटे अंगो छों में, बच्चे भी साथ ले,
ध्यान लगा सीला चमार है बीनते,
खेत कटाई की मजदूरी, इन्ही ने
जोता बोया सींचा भी था खेत की। " 66

माथुरजी ने अपने ग्राम्यजीवन में बहुत ही स्वाभाविक चित्रण किया है। उसमें वहाँ के रहन-सहन, आस्था और विश्वासों को प्रत्यक्षतः लेखनीबद्ध करने का प्रयास किया है। तो कहीं-कहीं लोक में प्रचलीत प्राचीन कथाओं को नया रूप दिया गया है। जिसमें माथुरजी ने ग्राम्य लोगों में जो अंधश्रद्धा है उसे बहुत ही मार्मिकता से चित्रित किया है। जैसे,

" चोटी उपर दिया चमकता
माथे कुंदन बोर-सा
नीली रात चँदोवे वाली
पंख गिरा ज्यों मोर का
सोंधी मिट्टी मीठा गेहूँ
दूध रसीला ज्वार में
धूप निकलता है कपास की
हिरन कजलते ब्वांर में। " 67

ग्राम्य लोगों के अंधश्रद्धा का चित्रण इसप्रकार हुआ है -

" चमका करती लौ, न कुचलती
अंधियारे की नाल से
कहते है जलता आया
यह दिया सैंकडो साल से
कौन डालता तेल
कौन अनहोनी बाती डालता। " 68

रामविलास चाहते हुए भी आधुनिक संवेदनाओं से स्वयं को मुक्त नहीं कर सके। आज के वैषम्य से पूर्ण संकट भरे वातावरण में जब मानव टूट रहा है और वह विलगन उसको आत्मस्थ बनाकर आत्मचिंतन को विवश कर देती है, उस समय उसे एक मृत्यूबोध होता है तो दूसरी

BABASAHEB BHIMRAO AMBEDKAR LIBRARY

ओर वह जिजीविषा को मुक्ति के रूप में देखता है। - शर्माजी के शब्दों में -

" नर मांसाहारी इन मृत्यु की वीभत्सा छायाओं में
मुक्ति देंगे जीवन को मृत्यू के पाश से। " 69

माथुरजी भी आत्मस्थ होकर चिंतन करता है। उसके जीवन में मानवीय आस्था, मृत्युंजयी भावना और संत्रास और मृत्युबोध आदि के पुट दिखायी देते है। जैसे -

" दूर होता जा रहा हूँ मैं स्वयं ही
जिंदगी-भर दूर ही रहना पडा है,
प्यार के सारे जगत से।
थक रही है क्वांर की सूनी दुपहरी,
श्वेत हल्के बादलों में सूर्य डूब
नीम-नीचे बालकों का स्वर मिला-सा छा रहा है।
धूल पैरों से हवा में उड रही है।
बालकों सा खेलता में जिंदगी में
किंतु साथी दूर पर बिछुडा हमारा। " 70

अज्ञेय और गिरिजाकुमार माथुर :-

अज्ञेयजी 'प्रयोगवादी' कविता के 'शलाका पुरूष' है। हिंदी कविता का नवीन तम मोड अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार-सप्तक' से आरंभ होता है। 'तार-सप्तक' का प्रकाशन उस ऐतिहासिक माँग की अभिव्यक्ति है, जिसमें विशिष्ट मानव की अपेक्षा मानव वैशिष्टयें पर बल देने की प्रवृत्ति अधिक मुखर थी।

अज्ञेयजी ने अपने काव्य में अपनी निजी अनुभूतियों तथा मानवीय और प्रकृतिगत जगत के स्पंदनों को स्वनिर्मित शिल्प के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने समष्टि को महत्वपूर्ण माना है, किंतु साथ ही व्यक्ति की निजता एवं महत्ता को अखंडित रखा है। इसप्रकार उन्होंने व्यक्ति मन की गरिमा को अपने काव्य में पुनः प्रतिष्ठित किया है और उसके विकास की ओर से मुख मोड लेने के कारण जो गंभीर संकट उपस्थित होता जा रहा है उसकी ओर आधुनिक कवियों का ध्यान आकृष्ट किया है।

अज्ञेय आत्मकेंद्रित या आत्मनिष्ठ या अहंनिष्ठ कवि है। नितांत वैयक्तिक क्षणों में भोगे हुए जीवन की सूक्ष्य अनुभूतियाँ उनकी कविता के मूल वर्ण्य विषय है। छोर

वैयक्तिकता का चित्रण उन्होंने इसप्रकार किया है।

" मैं आस्था हूँ।
लौ मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ,
मैं संघर्ष हूँ जिसे विश्वास नहीं
जो है मैं उसे बदलता हूँ,
तो मैं मानव का अलिखित इतिहास हूँ
मैं साधना हूँ
तो मैं प्रयत्न में कभी शिथिलन होने का निश्चय हूँ,
मैं संघर्ष हूँ जिसे विश्राम नहीं
जो है मैं उसे बदलता हूँ,
जो होगा उसे मुझे ही तो लाना है।
मैं अभय हूँ,
मैं भक्ति हूँ,
मैं जय हूँ। 71

तो माथुरजी के काव्य में अहंवादीती इस प्रकार व्यक्त हुई है। जैसे -

" मैं एक पहाड हूँ
सफेद गोबर का
मैं एक जरखेज रेगिस्तान हूँ
सूखे का
मैं एक मातमी नदी हूँ
भूख और मौत की उल्टियाँ
करती हुई
मैं एक डकारता जंगल हूँ
फटे पेट जानती हुई भीड का
मैं तिहरा समुद्र हूँ
कूडे का। " 72

तो कहीं कहीं रचनाओं में समष्टि-कल्याण का स्वर ही प्रधान है। कवि की सहानुभूति उन सबसे जिन्होंने अपने जीवन में दुख-दर्द और अभावों को सहन किया है। जैसे -

" इस लाली का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीडित है मेरे समान। " [73]

अज्ञेयजी के अनुसार 'आधुनिक युग का सामान्य व्यक्ति सेक्स संबंधी वर्जनाओं से आक्रांत है। उसका मास्तिष्क दमन की गई सेक्स की भावनाओं से पीडित है। इसी कारण न तो उसमें प्रेम का सामाजिक रूप ही है और न उसकी सूक्ष्म भावात्मकता है। उस पर मनोविश्लेषण विज्ञान का बहुत प्रभाव है। वह अपनी दमित वासना का जो बादल को देखकर उद्दीप्त हो उठता है। अति यथार्थवाद का चित्रण अज्ञेयजी में इसप्रकार हुआ है। जैसे -

" एक तार पर बिजली के वे सटे हुए बैठे थे
दो पक्षी छोटे-छोटे
घनी छाँह में, जग से अलग; किंतु परस्पर सलग
और नयन शायद अधमीचे
और उषा की धुँधली से अरूणीली थी सारा जग सीचे। " [74]

तो 'सावन मेघ' दमित वासना का चित्रण इसप्रकार किया है।

" घिर गया नभ, उमड आये मेघ काले
भूमि के कंपित उरोजों पर झुकासा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इंद्र का नील वृक्ष
वज्रसा यदि तडित से झुलसा हुआ-सा।
आह मेरा श्वास है उतप्त -
धमनियों से उमड आयी है लहू की धार -
प्यार है अभिशप्त -
तुम कहाँ हो, नारि ? "[75]

अज्ञेयजी ने कुंठाओं की अभिव्यक्ति हेतु यौन प्रतीकों, यौन बिम्बों का प्रयोग किया है, उनकी 'सावन मेघ' बहु चर्चित कविता है।

" वासना के पंक सी फैली हुई थी
धारायित्री सत्य-सी, निर्लज्ज, नंगी।
औ समर्पित। " [76]

प्रयोगवादी कवियों के प्रेम का स्वरूप मांसल ही है। यौवन वर्जनाओं एवं कुंठित वासनाओं से पीडित होने के कारण उन्होंने सर्वत्र अथवा बहुधा काम प्रवृत्तियों को ही केंद्रबिंदु माना है। इसप्रकार माथुरजी की रचनाओं में भी कहीं-कही अति यथार्थवादिता के दर्शन होते है। जैसे -

" तुम्हें नहीं मालूम
तुम्हारी देह का कुहकता स्वाद
जो तुम मन के भीतर से उँडेल कर
अब तक किसी को दे नहीं पायी
उसमें कितनी शराब है
कितनी ज्यादा संजीवनी
जिसे पाकर उम्र वापस मिल जाती है। " 77

प्रयोगवादी काव्यधारा में रागात्मकता के स्थान पर अस्पष्ट विचारात्मकता है और प्रयोगवादी बौद्धिकता सामान्य से दस कदम आगे है। धर्मवीर भारती के विचार से प्रयोगवादी कविता में भावना है किंतु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिन्ह को बौद्धिकता कह सकते है। इसतरह अज्ञेयजी के कविता में कई स्थलों पर अतिबौद्धिकता का चित्रण भी हुआ है।

जैसे अज्ञेयजी के शब्दों में -

" आओ बैठो
क्षणभर तुम्हें निहारू
झिझक न हो कि निरखना
दबी वासना की विकृति है।
चलो उठो अब। " 78

तो माथुरजी के काव्य में अतिबौद्धिकता का चित्रण भी हुआ है। जैसे -

" गहरी समाधियाँ पडी है
अस्तित्वों पर
शब्दों के बाँधे
अशब्दों का नाता है
जितना जो भंगुर है
सत्य के समीप वही

यह अशेष से अशेष तक की परिभाषा है
कितनी मरीचिकाएँ
अटकी है विराम बनी
कितनी सत्ताएँ सिद्ध हुई
मिटने के बाद।
किसी राज उत्सव में भटकते अपरिचित-सा
मैं ही खुद लगता हूँ अपनी सुदूर याद। " [79]

प्रयोगवादी कवि बहुधा निराशा के कुहासे से आवृत्त भी रहा है और वह क्षणवादी तथा निराशावादी ही जान पडती है। प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय ने कहाँ है कि जीवन में एक बार जब दुख की रेखा अंकित हो जाती है तो वह अमिट बनी रहती है।

अज्ञेयजी के शब्दों में -

" एक रेखा जिसे -
न बदला जा सकता है न मिटाया जा सकता है
न स्वीकार द्वारा ही डुबा दिया जा सकता है
क्योंकि वह दर्द की रेखा है।
और दर्द स्वीकार से मिटता नहीं है। " [80]

इसप्रकार श्री गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में भी क्षणवादी तथा निराशावादी प्रवृत्तियों का दर्शन होता है। जैसे -

" घन घुमडन भुज बंधन के उन्माद सी
बढती आती रात तुम्हारी याद सी। " [81]

निष्कर्ष -

इसप्रकार 'तार-सप्तक' के कवियों के साथ गिरिजाकुमार माथुरजी की तुलना करने के बाद मेरी स्पष्ट धारणा है कि प्रयोगवाद की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों जैसे अतियथार्थता, अतिबौद्धिकता, कुंठा, आक्रोश, निराशा, अहंवाद, सामाजिक विषमता प्रकृति वर्णन, रोमांस, सौंदर्यानुभूति, आदि को गिरिजाकुमार माथुरजी ने बडे ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। पुरे इस अध्याय में इन विशेषताओं को देखने के बाद मेरा यह मत स्पष्ट हो गया है कि 'तार-सप्तक' के कवियों की तरह उन्होंने भी अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। इसलिए गिरिजाकुमार माथुर मुझे श्रेष्ठ लगते है।

संदर्भ

अध्याय - 6

1) तार-सप्तक, भूमिका अज्ञेय पृ. 5, 6
2) तार-सप्तक पृ. 5, 8
3) वही पृ. 7।
4) गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में पृ. 122
5) जो बंध नहीं सका पृ. 9
6) शिला पंख चमकीले पृ. 8
7) तार-सप्तक - मुक्तिबोध पृ. 46, 47
8) वही पृ. 6।
9) धूप के धान पृ. 46, 47
10) तार-सप्तक - मुक्तिबोध पृ. 77
11) धूप के धान पृ. 35
12) तार-सप्तक - भारतभूषण अग्रवाल पृ. 101
13) छाया मत छूना मन पृ. 13
14) तार-सप्तक - भारतभूषण पृ. 105
15) वही पृ. 104
16) मंजीर पृ. 27
17) मुक्तिमार्ग पृ. 28
18) धूप के धान 95, 96
19) हिंदी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प पृ. 158
20) मंजीर पृ. 33
21) तार-सप्तक, अग्रवाल पृ. 117
22) तार-सप्तक - माथुर पृ. 175
23) हिंदी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प पृ. 160
24) तार-सप्तक - भारतभूषण पृ. 99
25) मैं वक्त के सामने हूँ पृ. 24
26) मुक्तिमार्ग अग्रवाल पृ. 14
27) छाया मत छूना मन पृ. 27
28) तार-सप्तक - वक्तव्य प्रभाकर माचवे पृ. 183
29) अनुक्षण माचवे पृ. 57
30) तार-सप्तक - माचवे पृ. 205
31) शिला पंख चमकीले पृ. 17
32) तार-सप्तक प्रभाकर माचवे पृ. 210
33) वही पृ. 192
34) छाया मत छूना मन पृ. 34
35) अनुक्षण प्रभाकर माचवे पृ. 35
36) छाया मत छूना मन पृ. 46
37) तार-सप्तक माचवे पृ. 193
38) वही पृ. 212
39) आज के लोकप्रिय हिंदी कवि पृ. 48

40) तार-सप्तक माचवे पृ. 209
41) शिला पंख चमकिले पृ. 73
42) तार-सप्तक - माचवे पृ. 188
43) वही पृ. 211
44) नाश और निर्माण पृ. 62
45) तार-सप्तक - नेमिचंद पृ. 24
46) शिला पंख चमकिले पृ. 80
47) तार-सप्तक - नेमिचंद्र पृ. 22
48) मंजीर पृ. 90
49) तार-सप्तक पृ. 12, 13
50) वही पृ. 15, 16
51) वही पृ. 20
52) छाया मत छूना मन पृ. 21
53) वही पृ. 15
54) तार-सप्तक - नेमिचंद्र पृ. 16
55) मंजीर पृ. 17
56) तार-सप्तक - नेमिचंद्र पृ. 61
57) मंजीर पृ. 19, 20
58) शिला पंख चमकिले पृ. 59, 60
59) तार-सप्तक - रामविलास शर्मा पृ. 232
60) वही पृ. 258
61) पृ. 247
62) वही पृ. 259
63) वही पृ. 261
64) शिला पंख चमकिले पृ. 60
65) तार-सप्तक - शर्मा पृ. 252
66) तार-सप्तक - माथुर पृ. 175, 76
67) तार-सप्तक - शर्मा पृ. 226
68) वही पृ. 239
69) वही पृ. 240
70) शिला पंख चमकिले पृ. 4
71) वही पृ. 5
72) तार-सप्तक - शर्मा पृ. 255
73) तार-सप्तक - माथुर पृ. 134, 35
74) तार-सप्तक - अज्ञेय पृ. 316
75) एक अंधनगा आदमी पृ. 6
76) शिला पंख चमकिले पृ. 80
77) अचरज पृ. 15
78) तार-सप्तक - अज्ञेय पृ. 281
79) वही पृ. 283
80) भितर नदी की यात्रा पृ. 19
81) अरी ओ करूणा प्रभमयी - अज्ञेय पृ. 29 82) शिला पंख चमकिले पृ. 38
83) तार-सप्तक पृ.283 84) छाया मत छूना मन पृ. 43